ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

गुरु जाम्भोजी की वाणी में लोक

KEY WORDS:

Pushpa Vishnoi Govt. Girls College Piparcity, Jodhpur

ABSTRACT

'लोक' स्वयं एक सम्पूर्ण शब्द है। जब वह अन्य के साथ जुड़ता है, तब वह शब्द 'लोक' का चोला धारण कर लेता है तथा अपने वास्तविक अर्थ को अंशतः खो देता है– जैसे लोक–वाद्य, लोक–साहित्य, लोक–गीत, लोक–कला तथा लोक–चेतना आदि। लोक अनुभूत सत्य तथा ज्ञान का भंडार है। 'लोक' वह जन समुदाय है, जो अपने सरलता, सहजता, निश्चलता, स्वभाविकता, के प्राकृतिक गुण के कारण सहज रूप में परम्पराओं, मूल्यों में विश्वास करता है तथा उनकी रक्षा करते हुए सहेजता भी है। गुरु जाम्भोजी ने समाज के सक्रिय सदस्य रहते हुए 'साधारण जन' को अपने आदर्शों से जागृत करने का प्रयास किया। सामान्य व्यक्ति की सोच के दायरे के भीतर एवं उसकी समझ के अनुरूप सरल नियमों से युक्त लोक धर्म की स्थापना की, जो उनके दैनिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी और सार्थक हो। सैद्धान्तिक ज्ञान के स्थान पर लौकिक ज्ञान का संदेश दिया। सभी लोगों को **''अड़सठ तीर्थ हिरदां भीतर, बाहर लोकाचारूं''** का विचार दिया। गुरु जाम्भोजी कृषक समाज के मध्य रहे। किसानों की अर्थव्यवस्था के मूल आधार पशु एवं वनस्पति है। उन्होंने 'जीव दया पालणी एवं रूंख लीलो नहीं घावे' का संदेश देकर उनका जीवनोद्धार किया तथा लोक की अर्थव्यवस्था को संरक्षित किया।

सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से होता रहा है। भारतीय आर्य भाषाओं का आदि रूप संस्कृत भाषा में मिलता है तथा लोक शब्द संस्कृत में शुद्ध तत्सम रूप में मिलता है। व्युत्पत्ति के अनुसार 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकृदर्षने' धातु में 'धञ्' जोड़ने से व्युत्पन्न है।[1] संस्कृत में इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है। इसका 'लट्लकार' में अन्य पुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' होता है। अतः व्युत्पत्ति के आधार पर 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन–समुदाय, जो इस कार्य को करता है, 'लोक' कहलायेगा।[2] 'लोक' स्वयं एक सम्पूर्ण शब्द है। जब वह अन्य के साथ जुड़ता है, तब वह शब्द 'लोक' का चोला धारण कर लेता है तथा अपने वास्तविक अर्थ को अंषतः खो देता है– जैसे लोक–वाद्य, लोक–साहित्य, लोक–गीत, लोक–कला तथा लोक–चेतना आदि।

लोक अनुभूत सत्य तथा ज्ञान का भंडार है। 'लोक' वह जन समुदाय है, जो अपने सरलता, सहजता, निष्चलता, स्वभाविकता, के प्राकृतिक गुण के कारण सहज रूप में परम्पराओं, मूल्यों में विश्वास करता है तथा उनकी रक्षा करते हुए सहेजता भी है। प्राणी मात्र के प्रति करूणा, दया रखते हुए सम्पूर्ण संसार के कल्याण की कामना करता है। सांसारिक छल, कपट एवं स्वार्थ से परे संतोष की वृत्ति का अनुगमन करता है। तथाकथित सभ्य एवं पांडित्य वर्ग की दृष्टि में वह सदैव हेय (दोयम दर्जे) समझा जाता रहा है।

राजस्थान में अनेक महान् संत हुए जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लोक के कल्याण हेतु समर्पित कर दिया तथा अपनी वाणी द्वारा लोक में अलख जगाया। इन संतों के जीवन का मूल ध्येय मात्र अध्यात्म या परमतत्व का चिन्तन करना ही नहीं था अपितु वे अपने युग, समय, समाज एवं समकालीन परिवष के प्रति अत्यधिक संवेदनषील भी थे। उन्होंने उस समय के लोगों के जीवन की धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों एवं विद्रूपताओं को पहचाना तथा उन्हें दूर करने हेतु सार्थक प्रयास किये। वे लोक के जागरूक प्रहरी थे तथा उन्होंने लोक में समानता, वर्ण विहीनता, धार्मिक बुराइयों से रहित समाज निर्माण के पक्षधर थे। संतों ने कभी लाचारों, दलितों एवं पतितों की भावनाओं को हवा देकर उग्र नहीं किया अपितु उन्हें उचित पथ–प्रषस्त करते हुए सार्थक जीवन जीने का संदेष दिया।

जोधपुर राज्य के नागौर परगने के पींपासर नामक ग्राम में भाद्रपद कृष्णा 8 संवत् 1508 (1451 ई.) सोमवार की अर्द्धरात्रि में ऐसे ही एक महान् संत ने जन्म लिया।[3] इनका नाम गुरु जाम्भोजी था। संत जाम्भोजी अपने समय के युग दृष्टा, पथ–प्रदर्षक एवं सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत थे। इनके द्वारा स्थापित मत में जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग एवं ऊँच–नीच का कोई स्थान नहीं था। वे सच्चे अर्थों में लोक–चेतना के प्रेरक थे। गुरु जाम्भोजी के उपदेषों एवं वचनों के संग्रह का नाम 'जम्भवाणी' है।[4] उनके वाणी का उद्देष्य कोई काव्य रचना करना न था, अपितु परमतत्व का स्मरण एवं समाज में जागरूकता लाना था।

इनकी वाणी व्यक्ति एवं समाज दोनों के कल्याण हेतु थी। इनमें अपने समय को समझने की अद्भुत क्षमता थी। अतः उन्होंने परिस्थितियों को समझा तथा सुधार हेतु प्रयास किया। जाम्भोजी पूर्वाग्रहों एवं शास्त्रीय–बंधनों से मुक्त थे। इन्होंने स्वचिंतन तथा स्वानुभूति द्वारा जो भी शाश्वत् एवं सार्वभौम प्रतीत हुआ, उसे लोक भाषा में सहजता के साथ अभिव्यक्त कर दिया। गुरु जाम्भोजी ने समाज के सक्रिय सदस्य रहते हुए 'साधारण जन' को अपने आदर्षों से जागृत करने का प्रयास किया। सामान्य व्यक्ति की सोच के दायरे के भीतर एवं उसकी समझ के अनुरूप सरल नियमों से युक्त लोक धर्म की स्थापना की, जो उनके दैनिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी और सार्थक हो।

जाम्भोजी की वाणी का महत्त्वपूर्ण होने का कारण मात्र धर्म एवं दर्षन के तत्वों का ही समावेश नहीं है अपितु उनकी दृष्टि का लौकिक होना भी है। उनकी वाणी लोक अर्थात् व्यक्ति एवं समाज को चिन्तन, मनन एवं निर्णय हेतु सक्षम बनाने की दिषा प्रदान करती है। उनकी वाणी में 'लौकिक चेतना' के सभी पक्ष विद्यमान है। जम्भवाणी के लौकिक–स्वरूप को जानने से पूर्व इन शब्दों के अर्थ जानना आवष्यक है। अपने अनुभव ज्ञान द्वारा आत्म विष्वास तथा निर्भीकता के साथ प्राचीन रूढ़ियों एवं अवधारणाओं को तोड़ा। लोक जागृति एवं नितान्त सरल साधारण जनता के उत्थान हेतु चेतना का अलख जगाया।

'कळि जुग बरतै चेतो लोई, चेतो चेतण हारूं।
सतगुर मिलियौ सतपंथ बतायौ, वेद अरथ उदगारू।।'[5]

मनुष्य समय रहते जागृत हो जाओ, कलियुग चल रहा है अर्थात् उनका समय मात्र ईश्वर भक्ति का युग नहीं था बल्कि परम शक्ति के प्रति बेपरवाह होकर अनैतिकता, शोषण, हिंसा, आडम्बर, अत्याचार एवं धर्म के नाम पर ब्राह्मणवाद का बोलबाला वाला था। व्यक्ति को सभी तरह से छला जा रहा था। व्यक्ति दिषाहीन होकर भ्रमित हो गया था। तब गुरुजी व्यक्ति को सभी प्रकार से सावचेत होने का कहते हैं। हे! लोगों चेतो। हे! चेतनषील प्राणी शीघ्र चेतना युक्त हो। तुम्हें सद्गुरु प्राप्त हुए हैं तथा संसार का एक मात्र सरल मार्ग सत्य की ओर उन्मुख करने हेतु तत्पर है। गुरु जाम्भोजी की वाणी के केन्द्र में लोक (साधारण जन) तथा उसकी मानसिक चेतना है। लोक की परिधि में सम्पूर्ण संसार के साधारण जन शामिल है। वे साधारण समाज के, सामान्य जनता के थे। अतः साधारण जन ही इनकी चिन्ता का केन्द्र रहा है, इसीलिए इन्होंने भाषा भी तत्कालीन लोक भाषा 'मरूभाषा' को चुना। इन्होंने वाणी के सभी काव्यरूप लोक से लिए, चाहे कहावत, लोकोक्ति, उपमान, रूपक एवं दृष्टांत हो, अपने कथ्य को इतना प्रांजल और जन–जीवन से पूर्णतया जुड़ाव रखा, तभी लोक को उसे अंगीकार करने मे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।

गुरु जाम्भोजी ने स्वस्थ भेदभाव रहित एवं मानवीय भावनाओं की कल्पना को साकार करते हुए मूर्त लोकवाद की स्थापना की। जाम्भोजी की वाणी में सामाजिक चिन्तन एवं मूल्य परक समाज स्थापना हेतु रचनात्मक निर्देषों के अन्तर्गत विनम्रता, क्षमा, सत्य, शील, तप, संतोष, संयम, दया, मानसिक शुद्धता, ईमानदारी, परोपकार तथा सहयोग आदि नैतिक नियमों पर विशेष बल दिया।[6] गुरु जाम्भोजी का जन्म उच्च वर्ण में होने के बावजूद उन्होंने सभी वर्णो के लोगों को बिना किसी भेदभाव के गले लगाया तथा जीवन पर्यन्त 'असभ्य' तथा 'अज्ञानी' कहे जाने वाले लोगों के उद्धार का कार्य किया।

संत जाम्भोजी के मन में लोक चेतना की तीव्र उत्कंठा रही। उसके कारण जीवन भर उनका धर्म सत्ता एवं राज सत्ता दोनों संघर्ष का सामना करना पड़ा। जिनका जम्भवाणी में कई स्थानों पर उल्लेख है। दिल्ली के बादषाह सिकन्दर को चेताने का जिक्र जाम्भोजी साहित्य एवं जम्भवाणी दोनों में मिलता है।

असकंदर चेतायो। मान्यो शील हकीकत जाग्यो।''[7]

दिल्ली के बादषाह सिकन्दर को चेतावनी देने तथा उसके द्वारा शील धर्म को अपनाना। उसे वास्तविकता का ज्ञान करवाया एवं हक की कमाई का रास्ता बताया। सिकन्दर लोदी आसानी से उनकी ओर नहीं आ गया था। ऐसे निरकुंष सम्राट तभी झुकते हैं, जब किसी सषक्त लोक योद्धा से सामना होता है। जाम्भोजी ने लोक चेतना का युद्ध पहाड़ों की गुफाओं में रहकर नहीं लड़ा अपितु जीवन पर्यन्त अटल, अडिग योद्धा की भाँति लोक में, लोक के साथ डटे रहे। चाहे बाल्यावस्था का मूला पूरोहित हो, चाहे सिकन्दर लोदी जैसा दिल्ली का सुल्तान। उनके सिद्धांत सर्वत्र सभी पर एक समान है तथा जनमुक्ति का बिगुल बजाने वाले भी।

सैद्धान्तिक ज्ञान के स्थान पर लौकिक ज्ञान का संदेष दिया। सभी लोगों को **''अड़सठ तीर्थ हिरदां भीतर, बाहर लोकाचारूं''**[8] का विचार दिया। उनका मानना था कि सभी तीर्थ मनुष्य के हृदय में स्थित है। सांसारिक लोग विभिन्न तीर्थाटन कर मात्र लोक में स्थापित एक कार्य व्यापार का अंधानुकरण कर रहे हैं।

गुरु जाम्भोजी प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा तथा पर्यावरण चेतना के सिद्धांत प्रदान करने वाले भक्तिकाल के महान् संत है। प्रकृति के उपासक गुरु जाम्भोजी ने प्रकृति को सम्पूर्णता के साथ जीया था। उनके वाणी में प्रकृति सर्वत्र विद्यमान है। वे पषुचारण काल में प्रकृति की गोद में आसीन होकर आत्मचिन्तन एवं मनन किया करते थे तथा अवसान के समय भी 'कंकेड़ी वृक्ष' के नीचे ही समाधिस्थ थे। गुरु जाम्भोजी कृषक समाज के मध्य रहे। किसानों की अर्थव्यवस्था के मूल आधार पषु एवं वनस्पति है। उन्होंने 'जीव दया पालणी एवं रूंख लीलो नहीं घावे' का संदेष देकर उनका जीवनोद्धार किया तथा लोक की अर्थव्यवस्था को संरक्षित किया। उन्होंने स्पष्टतः कहा– **'मोरै धरती ध्यान वणासपति वासौ'**[9] अर्थात् – पृथ्वी निरन्तर उनके चिन्तन एवं ध्यान में विद्यमान तथा वे प्रत्येक वनस्पति में स्थित है।

गुरु जाम्भोजी के सभी सिद्धान्त लोक को आधार बनाकर, उन्हीं के अनुरूप दिये गये। वे लोक के थे, लोक के मध्य रहे तथा अपने वाणी के रूप में लोक में ही समाहित हो गये। उनकी वाणी के पालन हेतु वैराग्य लेकर विमुख होने की आवश्यकता नहीं है, अपितु सामान्य जीवन यापन करते हुए सरलता पूर्वक उनका निर्वाह किया जा सकता है। उनकी वाणी निवृत्तमार्गी नहीं अपितु प्रवृत्तिमार्गी है, जो लोक का पथ सदैव प्रषस्त करती रहेगी।

---

1. सिद्वान्त कौमुदी :– वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई 1989 पृ. 416
2. हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास – षोडस भाग – महापंडित राहुल सांकृत्यायन पृ. 1 (प्रस्तावना)
3. (क) रिपोर्ट मर्दुमषुमारी राज मारवाड़ सन् 1891, पृ. 93 (ख) जाम्भोजी महाराज का जीवन–चरित्र :– महन्त सुरजनदास जी, पृ. 2
4. श्री जम्भोजी और जम्भवाणी मिमांसा :– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 4, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा अबोहर, प्र. सं. 2011
5. श्री जम्भवाणी टीका :– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 76–77 सबद सं. 24, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा अबोहर, प्र. सं. 2011
6. वही, सबद सं. 21, सबद 28, सबद 27, सबद 11, सबद 106, सबद 82, सबद 69 आदि।
7. जम्भगीता :–सं. मालाराम गोदारा, सबद 29, पृ. 114, जम्भेश्वर प्रकाशन सांचौर
8. शब्दवाणी जम्भसागर – कृष्णानन्द आचार्य, सबद 3 पृ. 24, अखिल भारतीय बिश्नोई महासभा, मुकाम, षष्ठम् सं. सन् 2012
9. श्री जम्भवाणी टीका :– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, सबद –27, पृ. 87, श्री गुरु जम्भेश्वर साहित्य सभा अबोहर, प्र. सं. 2011